फेयरग्रोथ इनवेस्टमेंट लिमिटेड

बनाम

अभिरक्षक

14 अक्टूबर, 2004

[न्यायमूर्ति रोमा पॉल व न्यायमूर्ति अरूण कुमार]

विशेष न्यायालय (प्रतिभूति संव्यवहार अपराध विचारण) अधिनियम, 1992/परिसीमा अधिनियम, 1963 धारा 4(2) /धारा 5 और 29(2) -धारा 4(2) के तहत याचिका -परिसीमा अवधि के बाद -देरी में माफी प्रदान करना -धारण की अनुमति। याचिका दायर करने में देरी को माफ नहीं किया जा सकता है -परिसीमा अवधि अनिवार्य है। देरी को माफ करने का प्रावधान कानून में प्रदान नहीं किया गया है, ना ही इस पर परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) की प्रयोज्यता के आधार पर परिसीमा अधिनियम की धारा 5 पर विचार किया जा सकता है। इसे सीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत माफ किया जा सकता है। परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) कानून पर लागू नहीं होती क्योंकि कानून ने परिसीमा अधिनियम के आवेदन को अपवर्जित कर रखा था।

न्यायिक औचित्य -न्यायिक घोषणा -दो विचार -एक डिवीजन बैंच द्वारा व दूसरा वृहद पीठ द्वारा अभिनिर्धारित किया गया। वृहद पीठ द्वारा व्यक्ति दृष्टिकोण पर भरोसा किया जाना चाहिये।

शब्दों और वाक्यांशों

अपवर्जन' का अर्थ

अपीलकर्ता को विशेष न्यायालय (प्रतिभूति संव्यवहार अपराध विचारण) अधिनियम 1992 की धारा 3(2) के तहत अधिसूचित किया गया था। अपीलकर्ताद्वारा अवधि से परे धारा के तहत निर्धारित सीमा की अधिनियम की धारा 4(2) के तहत अधिसूचना पर आपत्ति की याचिका दायर की। लेकिन धारा के तहत निर्धारित सीमा की अवधि से परे होने से विशेष न्यायालय द्वारा परिसीमा के आधार पर इसे खारिज कर दिया गया।

इस न्यायालय में अपील में अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि अधिसूचित व्यक्ति को केवल परिसीमा के आधार पर अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है, धारा 4(2) में परिसीमा अवधि निर्धारित करने वाला प्रावधान एक निर्देशिका था और अनिवार्य नहीं था। परिसीमा अधिनियम 1963 की धारा 29(2) स्वचालित रूप से सभी विशेष अधिनियमों पर लागू होगी, परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों का स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा बाहर नहीं रखा गया था, धारा 29(2) की प्रायोजता के आधार पर परिसीमा अधिनियम की धारा 5 धारा 4(2) के तहत याचिकाओं पर लागू होगी, इसलिए इसके तहत हुई देरी को माफ किया जाना चाहिये।

प्रत्यर्थी अभिसंरक्षक द्वारा तर्क दिया गया कि सीमा की अवधि निर्धारित है, धारा 4(2) में इसे केवल निर्देशिका नहीं कहा जा सकता है, परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) का कोई आवेदन इस अधिनियम में

नहीं होगा, अधिनियम की धारा 10 के तहत अपील के संबंध में स्पष्ट रूप से प्रदान की गई देरी को माफ करने की शक्ति प्रदान करने का तात्पर्य धारा 4(2) के तहत न्यायालय में ऐसी शक्ति के अपवर्जन से है।

न्यायालय द्वारा अपील खारिज की गई।

अभीनिर्धारित: 1.1 चूंकि अपीलकर्ता की आपत्ति की याचिका विशेष न्यायालय प्रतिभूति संव्यवहार अपराध विचारण अधिनियम, 1992 की धारा 4(2) के तहत निर्धारित अवधि से काफी बाद में दायर की गई थी। विशेष अदालत द्वारा तुरंत खारिज किया जाना सही ठहराया। [519-बी]

एल.एस. सिन्थेटिक लिमिटेड बनाम फेयरग्रोथ फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड व अन्य (2004)7 एससीएएलई 427 व हुकुम नारायण यादव बनाम एल.एन. मिश्रा (1974)2 एस.सी.सी. 133 से अवलम्ब लिया गया।

1.2 धारा 4(2) के अंतर्गत बताई गई भाषा व अधिनियम द्वारा प्रदान की जाने वाली वस्तुओं को ध्यान में रखते हुए आपत्ति दायर करने का समय एक बाध्यकारी प्रावधान है। विशेष न्यायालय के किसी भी अंतनिर्हित क्षेत्राधिकार के तहत न्यायालय द्वारा निर्धारित अवधि को नहीं बढ़ाया जा सकता है। [512-सी 515-सी]

डॉ0 जे.जे. मर्चेन्ट बनाम श्रीनाथ चतुर्वेदी [2002] 6 एस.सी.सी. 635 का पालन किया गया।

टॉपलाइन सूजेज लिमिटेड बनाम कॉर्पोरेशन बैंक [2002] 2 एस.सी.सी. 33 में निर्दिष्ट किया गया।

1.3 अधिनियम की धारा 4(2) में ''हो सकता है'' शब्द का मात्र उपयोग यह नहीं दर्शाता है कि धारा के अंतर्गत निर्धारित अवधि केवल निर्देशिका है, हो सकता है शब्द केवल आवेदनकर्ता को आवेदन दर्ज करने में सक्षम या सशक्त बनाता हो। (513-ए-बी)

मंगूराम बनाम दिल्ली नगर निगम [1976] 1 एस.सी.सी. 392 से अवलम्ब लिया गया।

1.4 धारा 4(2) में दिये शब्द स्पष्ट व पूर्ण हैं तथा न्यायालय द्वारा न्याय देने की किसी शक्ति के किसी भी सिद्धांत के आधार पर समय सीमा के वैधानिक प्रावधान को व्याख्या करने की गुजांइश नहीं है। [512-एफ]

आर रूदैइया बनाम कर्नाटक राज्य [1998] 3 एससीसी 23 से अवलम्ब लिया गया।

1.5 यह निर्धारित करना न्यायालय का काम नहीं है कि अधिनियम की धारा 4(2) के तहत आपत्तियां दाखिल करने की इच्छा रखने वाले अधिसूचित व्यक्तियों द्वारा सामान किये जाने वाले विभिन्न दुर्भाग्यों को ध्यान में रखने के लिए तीस दिन की अवधि बहुत कम है या नहीं, ना ही धारा में स्पष्ट रूप से समय की इस कमी के संबंध में अभिनिर्धारित किया गया है। [513-जी]

संग्राम सिंह बनाम चुनाव अधिकरण, कोथा बूरेलाल बया [1955] 2 एससीआर 1 व सिंडीकेट बैंक बनाम प्रभा डी. नायक व अन्य [2001] 4 एससीसी 713 और सी. विपाथुम्मा व अन्य बनाम कुदम्बलिथ्या व अन्य [1964] 5 एससीआर 836 प्रसिद्ध।

नगेन्द्र नाथ बनाम सुरेश एआईआर (1932) पी.सी. 165 व एन्टोनीसामी बनाम अरूल्लानंदम पिल्लई (मृतक) वारिसान द्वारा व अन्य [2001] 9 एससीसी 666, से संदर्भित।

1.6 यदि विलम्ब को माफ करने की शक्ति प्रत्येक वैधानिक प्रावधान में निहित होती तो न्यायालय के समक्ष कार्यवाही के संबंध में परिसीमा अवधि प्रदान करने से परिसीमा अधिनियम 1963 की धारा 29(2) निरर्थक हो जायेगी। [513-एफ]

1.7 कानूनी कार्यवाहियों में विहित समय का पालन न्यायालय में देरी माफी के लिए कोई स्पष्ट शक्तियां प्रदत्त नहीं किये जाने के अनुसरण में किया जाना चाहिये। [512-सी]

1.8 धारा 4(2) के देरी से याचिका आवेदन करने के लिए कानून स्वयं इसके संबंध में कोई प्रावधान नहीं करता है। इस शक्ति का एक संभावित स्त्रोत परिसीमा अधिनियम 1963 की धारा 5 हो सकती है, बशर्ते यह अधिनियम पर लागू हो। परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 29(2) किसी भी विशेष या स्थानीय कानून के लिए धारा 5 सहित 1963 के अधिनियम की धारा 24 की धारा 4 के प्रावधानों को लागू करने का

प्रावधान करती है, जो सीमा अधिनियम के तहत निर्धारित अवधि से अलग किसी भी मुकदमे अपील या आवेदन के संबंध में सीमा की अवधि निर्धारित करती है। दूसरे शब्दों में जहां तक विशेष या स्थानीय अधिनियमों का संबंध है, सामान्य नियम यह है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 सहित निर्दिष्ट प्रावधान लागू होंगे, बशर्ते विशेष या स्थानीय अधिनियम परिसीमा अधिनियम के तहत निर्धारित अवधि से अलग परिसीमा की अवधि प्रदान ना करता हो। एक अतिरिक्त आवश्यकता है कि विशेष/स्थानीय अधिनियम परिसीमा अधिनियम के अनुप्रयोग को स्पष्ट रूप से बाहर नहीं करता है। [515-डी-एफ]

1.9 अधिनियम स्पष्ट रूप से अथवा आवश्यक रूप से परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों को अपवर्जित करता है। तथ्य यह है कि इसे अधिनियम की धारा 10(3) के तहत देरी को माफ करने की शक्ति प्रदान की है, यह दर्शाता है कि संसद ने जानबूझकर धारा 4(2) के संबंध में न्यायालय की शक्ति को बाहर रखा था। अधिनियम की धारा 13 बावजूद प्रावधान के देरी माफी के संबंध में अभिव्यक्त प्रावधान बताती है। अधिनियम की धारा 4(2) के तहत याचिका पर परिसीमा अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होते हैं। [515-जी, 516-ए, 516-एफ]

गोपाल सरदार बनाम करूणा सरदार [2004] 4 एस.सी.सी. 252 से अवलम्ब लिया गया।

सक्षम प्राधिकारी तराना बनाम विजय गुप्ता [1991] सुप्रीम 2 एस.सी.सी. 631 मंगूराम बनाम दिल्ली नगर निगम [1976] 1 एस.सी.सी. 392 व विद्याचरण शुक्ला बनाम खूबचंद [1964] 6 एस.सी.आर. 129 में अंतर किया गया।

2. अपवर्जन शब्द में आवश्यक निहितार्थ द्वारा अपवर्जन भी शामिल है। [515-एफ]

यूनियन ऑफ इंडिया बनाम पॉपुलर कन्सट्रेक्शन कंपनी [2001]8 एससीसी 470 से अवलम्ब लिया गया।

3. वृहद पीठ द्वारा व्यक्त विचार को देखते हुए यह उचित नहीं होगा कि एक छोटी पीठ द्वारा व्यक्त की गई राय पर आगे बढ़ा जाये। [515-बी]

भारत संघ व अन्य बनाम के.एस. सुब्रमन्यम एआईआर (1976) एससी 2433 से अवलम्ब लिया गया।

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 4065/2004

बॉम्बे के विशेष न्यायालय प्रतिभूति संव्यवहार अपराध विचारण अधिनियम के निर्णय व आदेश दिनांक 08.08.2003 का विविध आवेदन नंबर 575/2002

अपीलार्थी की ओर से कृष्णन वेणुगोपाल, उदय एन तिवारी, श्रीप्रसाद वी.के. एंड ए. रघुनाथ

प्रत्यर्थी की ओर से सुब्रमन्यम प्रसाद, गोपाला कृष्णन आर., अभय कुमार एंड राहुल कुमार

न्यायालय द्वारा निर्णय सुनाया गया।

रोमा पॉल न्यायमूर्ति: इस अपील में यह सवाल उठाया गया कि क्या विशेष न्यायालय प्रतिभूति संव्यवहार अपराध विचारण अधिनियम 1992 (इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित) के तहत गठित विशेष न्यायालय के पास अधिनियम की धारा 4(2) के तहत देरी से पेश की गई याचिका को माफ करने की शक्ति है।

इस अधिनियम का उद्देश्य विभिन्न और वित्तीय संस्थानों के कर्मचारियों के साथ मिली भगत में कुछ दलालों द्वारा प्रतिभूतियों में लेन-देन में बड़े पैमाने पर अनियमित्ता और कदाचार से उत्पन्न स्थिति से निपटने के लिए है, जैसा कि उद्देश्य व कारणों के विवरण में कहा गया है। विशेष रूप से अधिनियम का उद्देश्य बैंक और वित्तीय संस्थानों से दलालों के व्यक्तिगत खातों में भेजे गये धन की शीघ्र वसूली सुनिश्चित करना है। विशेष रूप से इसका उद्देश्य बैंकों और वित्तीय संस्थानों से दलालों के व्यक्तिगत खातों में भेजी गई निधियों की त्वरित वसूली सुनिश्चित करना, दोषियों को दंडित करना और बैंकों और वित्तीय संस्थानों की बुनियादी अखंडता और विश्वसनीय में विश्वास बहाल करना और बनाये रखना है।

इन उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए 1 अप्रेल, 1991 के बाद से 6 जून, 1992 तक की अवधि के लिए प्रतिभूतियों के लेन-देन से संबंधित

किसी भी अपराध में शामिल किसी भी व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए एक या एक से अधिक अभिरक्षकों की नियुक्ति का प्रावधान करता है। अधिनियम की धारा 3 की उपधारा 2 में अभिरक्षक ऐसे व्यक्ति का नाम राजपत्र में अधिसूचित कर सकेगा। ऐसी अधिसूचना के पश्चात इस अधिनियम की धारा 3 की उपधारा 3 में अधिसूचित व्यक्ति से संबंधित जंगम या स्थावर या दोनों ही प्रकार की कोई संपत्ति अधिसूचना के निकाले जाने के समय से ही कुर्क हो जायेगी। ऐसी कुर्क संपत्ति को अभिरक्षक द्वारा ऐसी रीति से बरता जायेगा जैसा विशेष न्यायालय निर्देश देगा।

अधिनियम की धारा 5 के तहत विशेष न्यायालय की स्थापना की गई थी। अधिनियम की धारा 3 की उपधारा 3 के तहत कुर्क की गई किसी भी संपत्ति के साथ साथ उपरोक्त अवधि के दौराने किये गये प्रतिभूओं के लेन-देन के संबंध में, जिसमें अधिसूचित पक्षकार दलाल, मध्यस्त व अन्य तरीके से शामिल व्यक्ति को किसी भी मामले के संबंध में सिविल न्यायालय के समान अधिकार प्राप्त है। धारा (9-ए (1))

धारा 4 की उपधारा 2, (जहां तक सुसंगत हो,) व्यथित व्यक्ति को धारा 3 उपधारा 2 अधिसूचना जारी होने से 30 दिन के भीतर अर्जी फाइल कर सकेगा। विशेष न्यायालय पक्षकारों को सुनवाई करने के पश्चात ऐसा आदेश कर सकेगा, जो वह ठीक समझे। ऐसे मामले से निपटने के दौरान विशेष न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 द्वारा निर्धारित प्रक्रिया से बाध्य नहीं है, लेकिन प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों द्वारा मार्गदर्शन प्राप्त

करेगा तथा इस अधिनियम के और इसी नियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए विशेष न्यायालय धारा 9 की उपधारा 4 में अपनी प्रक्रिया का स्वयं विनियमन करने की शक्ति होगी। अधिनियम की धारा 10(3) इस न्यायालय के निर्णय दंडादेश या आदेश की तारीख से 30 दिन के भीतर अपील की जा सकेगी। अधिनियम की धारा 10(3) में यदि न्यायालय को अपीलार्थी द्वारा संतुष्ट कर दिया जाता है कि अपील को 30 दिन के भीतर पेश ना कर पाने का पर्याप्त कारण था तो 30 दिन की उक्त अवधि के समाप्ति के पश्चात भी न्यायालय अपील ग्रहण कर सकेगा। धारा 13 अधिनियम का अन्य कानूनों पर अध्यारोही प्रभाव होना बताती है। संक्षेप में इस अधिनियम के प्रावधान अपील के उद्देश्यों के लिए महत्वपूर्ण है।

यह अधिनियम 6 जून, 1992 को लागू को अस्तित्व में आया था। अपीलार्थी को 20 नवम्बर, 2001 को धारा 3(2) के तहत अन्य लोगों के साथ सूचित किया गया था। 23 नवम्बर, 2001 को अभिरक्षक द्वारा अपीलार्थी को सूचित किया गया कि उसे धारा 3(2) के तहत अधिसूचित किया गया व उसकी संपत्ति अधिसूचना जारी किये जाने की दिनांक से कुर्क की गई। अपीलार्थी द्वारा अभिरक्षक से अधिसूचना जारी किये जाने की दिनांक से संपत्तियों का विवरण प्रस्तुत करने का निवेदन किया गया था। अभिरक्षक के पत्र के जवाब में अपीलकर्ता ने कारणों एवं परिस्थितियों के बारे में पूछा जो अपीलकर्ता को अधिसूचित करने के लिए अभिरक्षक के निर्णय का आधार बने। अपीलकर्ता द्वारा यह भी कहा गया कि वह अपनी

संपत्तियों का विवरण प्रस्तुत करने की प्रक्रिया में था। 8 अक्टूबर, 2002 को अपीलार्थी द्वारा एक याचिका अधिनियम की धारा 4 की उपधारा 2 अधिसूचना पर आपत्ति करते हुए पेश की गई। विशेष न्यायालय द्वारा आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि वह धारा 4(2) में विहित परिसीमा अवधि के बाद पेश की गई है।

अपीलार्थी द्वार तर्क दिया गया कि अभिरक्षक द्वारा अधिनियम लागू होने के लगभग 10 वर्ष बाद अधिनियम की धारा 3(2) के तहत अधिसूचना जारी की थी। पेश की गई अधिसूचना अमान्य थी। अपीलार्थी के अनुसार धारा 4(2) के तहत अधिसूचना पर आपत्ति करने का अधिसूचित व्यक्तियों का अधिकार एक मूल्यवान अधिकार था, क्योंकि अधिसूचित होने के परिणाम पर चल व अचल दोनों संपत्तियों को कुर्क किया जाना था, जो कि गंभीर था। यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया कि अधिसूचित व्यक्तियों को केवल परिसीमा के आधार पर अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है। यह भी तर्क दिया गया कि परिसीमा का नियम एक प्रक्रियात्मक आवश्यकता है और प्रक्रिया के सभी मामलों की तरह न्याय के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए काम करना चाहिये ना कि उसे विफल करने के लिए। अपीलार्थी के अधिवक्ता द्वारा अपने आवेदन के पक्ष में अध्यक्ष त्रिरूवल्लूवर परिवहन निगम बनाम उपभोक्ता संरक्षण काउंसिल [1995] 2 एससीआर 1 सिंडीकेट बैंक बनाम प्रभा डी नायक व अन्य [2001] 4 एससीसी 713 व सी. विपाथुम्मा व अन्य बनाम कुदम्बलिथया

व अन्य [1964] 5 एससीआर 836 पेश किया। अपीलकर्ता के अनुसार धारा 4(2) में परिसीमा अवधि निर्धारित करने वाला प्रावधान निर्देश मात्र है और इसलिए विशेष न्यायालय ऐसे निर्देश का पालन ना करने के कारण आवेदन को अस्वीकार नहीं कर सकता था। अपीलार्थी के अधिवक्ता के अनुसार किसी भी दंडात्मक परिणाम की अनुपस्थिति से यह पता चलता है कि एक विनिर्दिष्ट समय के भीतर आपत्ति दर्ज नहीं किये जाने की पूर्ति ना होने पर अधिसूचना पर उठाये गये सवालों के संबंध में अधिसूचित व्यक्ति के मूल अधिकार का हनन नहीं होगा। टॉपलाइन सूजेज लिमिटेड बनाम कॉर्पोरेशन बैंक (2002) 6 एससीसी 33 में इस न्यायालय के निर्णय के अधिकार के प्रस्ताव से अवलम्ब लिया गया। अपीलार्थी के अधिवक्ता का अगला आवेदन रहा कि परिसीमा अधिनियम 1963 की धारा 29(2) के साथ साथ परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के प्रावधान इस अधिनियम की धारा 4(2) के तहत याचिकाओं पर लागू होंगे। तर्क रहा कि परिसीमा अधिनियम 1963 की धारा 29(2) सभी विशेष अधिनियम पर लागू होगी, क्योंकि परिसीमा अधिनियम 1963 के तहत निर्धारित अवधि से भिन्न परिसीमा अवधि का प्रावधान करता है व परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों को स्पष्ट रूप से अथवा आवश्यक निहितार्थ द्वारा बाहर नहीं किया गया है। मंगूराम बनाम दिल्ली नगर निगम [1976] 1 एससीसी 392 व विद्याचरण शुक्ला बनाम खूबचंद बघेल [1964] 6 एससीआर 129 के न्यायालय के निर्णय के आधार पर तर्क दिया गया कि केवल इसलिए कि धारा 10(3) के

तहत क्षमा करने की शक्ति दी गई है, इसे धारा 4(2) के संबंध में परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत उसी शक्ति के आवश्यक अपवर्जन के रूप में नहीं माना जा सकता है। हालांकि अपीलार्थी की ओर से उपस्थित अधिवक्ता द्वारा स्वीकार किया गया है एल.एस. सिंथेटिक्स लिमिटेड बनाम फेयरग्रोथ फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड व अन्य (2004) 7 एससीएएलई 427 में अभिनिर्धारित किया गया है कि परिसीमा अधिनियम 1963 के प्रावधान इस अधिनियम पर लागू नहीं होते हैं। हालांकि यह प्रस्तुत किया जाता है कि अदालत के निष्कर्ष की व्यापक भाषा के बावजूद उस मामले में कहा गया है कि तर्क से पता चलता है कि यह सवाल तक सीमित था कि क्या सीमा अधिनियम के तहत निर्धारित अवधि अधिनियम की धारा 11 पर लागू होती है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि एल.एस. सिंथेटिक में निर्णय को संकीर्ण रूप से समझा जाना चाहिये, अन्यथा निष्कर्ष एक तथ्यात्मक त्रुटि पर आधारित होगा। निर्णय के पैराग्राफ 38 और 39 की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए बताया गया है कि न्यायालय ने माना है कि सीमा अधिनियम के प्रावधानों को बाहर रखा गया था, क्योंकि अधिनियम में किसी भी परिसीमा की अवधि का प्रावधान नहीं था। यह इंगित किया गया कि एक अधिनियम एक पूर्ण संहिता नहीं थी, जो कि धारा 4(2) और 10(3) में परिसीमा की अवधि का प्रावधान किया गया था।

अभिरक्षक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा कहा गया कि धारा 4(2) के तहत निर्धारित सीमा की अवधि को केवल निर्देशिका नहीं

कहा जा सकता है। डॉ0 जे. मर्चेन्ट बनाम श्रीनाथ चतुर्वेदी [2002]6 एससीसी 635 के मामले में वृहद पीठ के फैसले को देखते हुए टॉपलाइन (सुप्रीम) में निर्णय का अलग करने योग्य व किसी भी स्थिति में अच्छा कानून नहीं कहा गया था। यह तर्क दिया गया कि परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) का अधिनियम पर कोई प्रभाव नहीं होगा क्योंकि अधिनियम के उद्देश्य और योजना से यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 4(2) के तहत निर्धारित अवधि न्यायालय द्वारा नहीं बढ़ाई जा सकती थी। धारा 10 के अंतर्गत अपील के संबंध में स्पष्ट रूप से ऐसी शक्ति प्रदान करने का तात्पर्य धारा 4(2) के तहत न्यायालय में ऐसी शक्ति के अपवर्जन से है। यह तथ्य भी प्रस्तुत किया गया है कि धारा 13 के साथ जो अधिनियम के प्रावधानों को अधिभावी प्रभाव दिया गया है, एक स्पष्ट संकेत है कि सीमा अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होंगे। इस संबंध में गोपाल सरदार बनाम करूणा सरदार [2004]4 एससीसी 252 में बताया गया है। अंत में यह तर्क दिया गया कि इस अपील में उठाये गये प्रश्न को एलएस सिंथेटिक केस (सुप्रीम) में तीन न्यायाधीशों के द्वारा निष्कर्ष दिया गया है।

हमारे मत के अनुसार अधिनियम की धारा 4(2) के तहत आपत्ति के लिए याचिका दायर करने के लिए समय सीमा निर्धारित करने का प्रावधान इस अर्थ में अनिवार्य है कि निर्धारित अवधि को विशेष न्यायालय के किसी भी अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के तहत न्यायालय द्वारा नहीं बढ़ाया जा सकता है। कानूनी कार्यवाहियों में विहित समय का पालन न्यायालय में देरी माफी

के लिए कोई स्पष्ट शक्तियां प्रदत्त नहीं किये जाने के अनुसरण में किया जाना चाहिये। इस प्रकार परिसीमा अधिनियम 1963 परिसीमा के संबंध में विभिन्न अवधियों का प्रावधान करता है, जैसा कि जिसके भीतर जैसा भी मामला हो, मुकदमे, अपील और आवेदन पेश किये जा सकतें हैं या दायर किये जा सकते हैं। यह कुछ मामलों में निर्धारित अवधि को विस्तारण का प्रावधान करता है। निर्धारित परिसीमा अवधि की गणना के लिए आधार निर्धारित करता है और कुछ कार्यवाहियें के संबंध में धारा 5 के तहत स्पष्ट रूप से परिसीमा के विस्तारण का प्रावधान करता है। यदि निर्धारित अवधि अनिवार्य नहीं होती तो निश्चित रूप से समय के अपवर्जन या विस्तार के लिए प्रावधान करना आवश्यक नहीं होता, ना ही समय की गणना का कोई अर्थ होता।

अधिनियम की धारा 4(2) व धारा 3 की उपधारा के तहत जारी अधिसूचना पर आपत्ति करने वाले व्यक्ति को ऐसी अधिसूचना जारी होने के तीस दिनों के भीतर ऐसी आपत्तियां उठाने वाली याचिका दायर करने की आवश्यकता बताती है। वैधानिक प्रावधानों की व्याख्या के किसी भी सिद्धांत के आधार पर समय सीमा को समाप्त करने के लिए न्यायालय की शक्ति के संबंध में शब्द स्पष्ट व पूर्ण हैं। आर. रुदैइया बनाम कर्नाटक राज्य [1998]3 एससीसी 23 में अपीलकर्ताओं की ओर से तर्क रहा कि कर्नाटक भूमि सुधार अधिनियम की धारा 48ए, जो कि एक विशेष अवधि के भीतर एक आवेदन करने का प्रावधान करती है, उसे किरायेदारों के पक्ष में

उदारतापूर्वक समझा जाना चाहिये, ताकि अवधि को विस्तार योग्य समझा जा सके। आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि धारा 48ए की भाषा स्पष्ट और केवल किरायेदारों का कठिनाई के आधार पर इसकी अलग-अलग व्याख्या नहीं की जा सकती थी।

केवल इस तथ्य के आधार पर कि विशेष न्यायालय को उच्च न्यायालय के समान दर्जा प्राप्त हो गया है तो इससे स्थिति में कोई बदलाव नहीं आयेगा। हमारे विचार में अधिनियम की धारा 4(2) का अतिरिक्त उपयोग करना आवश्यक नहीं है। अनुदेशात्मक भाषा जैसे ''लेकिन उसके बाद नही'' या करेंगे से यह बाध्यकारी हो जाता है कि तीस दिन के भीतर आपत्ति दर्ज करानी होगी। अधिनियम की धारा 4(2) में ''हो सकता है'' शब्द का मात्र उपयोग यह नहीं दर्शाता कि धारा के तहत निर्धारित अवधि केवल निर्देशिका है। ''हो सकता है'' शब्द केवल आपत्तिकर्ता को आपत्ति दर्ज करने में सक्षम या सशक्त बनाता हो। अधिनियम की धारा 4(2) की भाषा की तुलना परिसीमा अधिनियम 1963 की धारा 4 और 6 से की जा सकती है। परिसीमा अधिनियम की धारा 4 प्रावधान करती है कि:

> ''4. विहितकाल का अवसान जब न्यायालय बंद हो- जहां कि किसी वाद, अपील या आवेदन के लिए विहित काल का अवसान किसी ऐसे दिन होता हो, जिस दिन

न्यायालय, बंद हो, वहां उस दिन वाद संस्थित किया जा सकेगा, अपील की जा सकेगी या आवेदन किया जा सकेगा, जिस दिन न्यायालय फिर खुले।''

परिसीमा अधिनियम की धारा 6 की उपधारायें उस अवधि का भी प्रावधान करती है, जिसके भीतर कोई अप्रासवय या पागल या जड़ मुकदमा दायर कर सकता है। यह तर्क नहीं दिया जा सकता कि इन धाराओं में ''हो सकता है'' शब्द यह दर्शाता है कि निर्धारित अवधि केवल निर्देशिका थी। मंगूराम बनाम दिल्ली नगर निगम [1976]1 एससीसी 392 में सीमा की अवधि के वैधानिक प्रावधानों का अनिवार्य और बाध्यकारी बताया और यह भी कहा कि

''ऐसा इसलिए है क्योंकि परिसीमा की अवधि से परे किसी आवेदन के खिलाफ किसी विशेष या स्थानीय कानून द्वारा प्रतिबंध लगाया गया है, इसलिए धारा 5 (परिसीमा अधिनियम) की सहायता लेना आवश्यक हो जाता है, ताकि आवेदन पर विचार किया जा सके।

यदि विलम्ब को माफ करने की शक्ति प्रत्येक वैधानिक प्रावधान में निहित होती तो न्यायालय के समक्ष कार्यवाही के संबंध में परिसीमा अवधि प्रदान करने से परिसीमा अधिनियम 1963 की धारा 29(2) निरर्थक हो जायेगी। हम बाद में धारा 29(2) के दायरे और प्रायोजता पर अधिक विस्तार से चर्चा करेंगे।

यह निर्धारित करना न्यायालय का काम नहीं है कि अधिनियम की धारा 4(2) के तहत आपत्तियां दाखिल करने की इच्छा रखने वाले अधिसूचित व्यक्तियों द्वारा सामना किये जाने वाले विभिन्न दुर्भाग्यों को ध्यान में रखने के लिए तीस दिन की अवधि बहुत कम है या नहीं, ना ही धारा में स्पष्ट रूप से समय की इस कमी के संबंध में अभिनिर्धारित किया गया है। इस तरह की कथित अपर्याप्ता के कारण धारा को निर्देशिका माना जा सकता है। जैसा कि प्रीवी कोसिंल द्वारा नगेन्द्र नाथ बनाम सुरेश एआईआर(1932) पी.सी. 165 में अभिनिर्धारित किया गया है।

> ‘‘सीमा की अवधि का निर्धारण हमेशा कुछ हद तक आवश्यक रूप से मनमाना हो सकता है, जिसके परिणामस्वरूप अक्सर कठिनाईयां हो सकती हैं, लेकिन इसे न्यायसंगत विचार उपयुक्त प्रावधान तथा व्याकरणिक अर्थ व शब्दों से व्याख्या करनी चाहिये। हमारे न्यायमूर्ति का मानना है कि यही सुरक्षित मार्गदर्शक है।’’

(यह भी देखें: एन्टोनिशामी बनाम अरूलानंदम पिल्लई(मृतक) वारिसान व अन्य [2001]9 एससीसी 658, 666)

अधिनियम की धारा 3 उपधारा 3 के तहत पक्षकार अधिनियम की धारा 9(ए) और धारा 11 के तहत विशेष न्यायालय द्वारा मामले पर अंतिम निर्णय के अधीन है। इस तरह यह केवल एक अंतरिम उपाय है।

अपीलार्थी की ओर से तीन न्यायिक निर्णयों से अवलम्ब लिया गया, संग्राम सिंह बनाम चुनाव न्यायधीकरण कोथा बूरेलाल बया (1955)2 एससीआर 1, सिंडीकेट बैंक बनाम प्रभा (सुप्रीम) और सी. विपाथुम्मा (सुप्रीम) उन कानूनों से संबंधित नहीं है, जिन्हें अधिनियम के समरूप कहा जा सकता है। संग्राम सिंह के मामले में न्यायालय को इस बात पर विचार करना था कि क्या चुनाव न्यायधीकरण ने एक आदेश को वापिस लेने से इंकार कर दिया था, जिसमें यह निर्देश दिया गया था कि एक चुनाव याचिका का एकपक्षीय निपटारा किया जाना चाहिये। यह लेखबद्ध किया गया कि जनप्रतिनिधि अधिनियम 1951 की धारा 19(2) ने अधिकरण को सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत परीक्षणों के लिए निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने का निर्देश दिया। सिविल प्रक्रिया संहिता के तत्कालीन प्रावधानों के आधार पर यह पाया गया कि अदालत के पास आदेश पारित होने के बाद भी प्रतिवादी को कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति देने की शक्ति थी कि मुकदमे को एकतरफा रूप से आगे बढ़ाया जाना चाहिये। दोनों मामलों यानी सिंडीकेट बैंक और सी. विपाथुम्मा को इस प्रस्ताव के लिए

निर्णय के रूप में उद्धृत किया गया कि परिसीमा का कानून एक प्रक्रियात्मक कानून है और मुकदमे की तारीख पर मौजूदा प्रावधान लागू होंगे। हमारा इस प्रस्ताव से कोई असहमति नहीं है, लेकिन इस अपील में तय किये जाने वाले प्रश्न के लिए निर्णयों की प्रासंगिकता विफल है। इनमें से कोई भी निर्णय इस सवाल को नहीं बताता कि क्या अधिनियम की धारा 4(2) में वैधानिक प्रावधान को अनिवार्य निर्देशिका के रूप में माना जाना चाहिये।

इस प्रश्न के समाधान के लिए टॉपलाइन शूज लिमिटेड बनाम कॉर्पोरेशन बैंक (2002)2 एससीसी 33 है। उस मामले में इस विषय वस्तु की व्याख्या की गई थी कि उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 की धारा 13(1ए) था, जो प्रावधान करता है कि अधिनियम के तहत शिकायत का विरोध करने वाले व्यक्ति को ''तीस दिनों की अवधि के भीतर या जिला फोरम द्वारा दी गई 15 दिनों से अधिक की विस्तारित अवधि के भीतर'' शिकायत का जवाब दाखिल करना आवश्यक था। न्यायालय ने उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के प्रावधानों को ध्यान में रखकर इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि समय विस्तार की अवधि ''15 दिन से अधिक नहीं'' निर्देशिका थी और ''मजबूत शब्दों में वांछनीयता थी, अभिव्यक्ति थी । टॉपलाइन शूज लिमिटेड में व्यक्त दृष्टिकोण की सत्यता के बारे में अपनी आपत्ति व्यक्त करते हुए वृहद पीठ द्वारा डॉ0 जे.जे. मर्चेन्ट के मामले में दिये गये उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की धारा 13(1ए) के प्रावधानों का

भी अर्थ लगाया गया, इस न्यायालय के बाद के निर्णय को देखते हुए इस तरह के कारण पर विस्तार करना आवश्यक नहीं है। न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना कि किसी शिकायत का जबाव प्रस्तुत करने के लिए 45 दिनों की बाहरी अवधि का सख्ती से पालन किया जाना। एक वृहद पीठ द्वारा व्यक्ति किये गये विचारों को देखते हुए टॉपलाइन शूज में एक लघु न्यायपीठ द्वारा पहले व्यक्ति की गई राय पर आगे बढ़ना उचित नहीं होगा। इस संबंध में भारत संघ व अन्य बनाम के.एस. सुब्रमण्यम एआइआर [1976] एससी 2433 देखें। इसलिए हमारा विचार है कि अधिनियम में धारा 4(2) में आपत्ति दर्ज करने की अवधि धारा की भाषा व अधिनियम में दिये गये उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए एक अनिवार्य प्रावधान है।

यह हमें इस सवाल पर लाता है कि क्या देरी की माफी की शक्ति धारा 4(2) के तहत याचिका दायर करने में विशेष न्यायालय के पास मौजूद है। हमने माना कि कानून स्वयं इसके लिए प्रावधान नहीं करता है। इस शक्ति का एक संभावित स्त्रोत परिसीमा अधिनियम 1963 की धारा 5 हो सकती है, बशर्ते यह अधिनियम पर लागू हो। परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 29(2) किसी भी विशेष या स्थानीय कानून के लिए धारा 5 सहित 1963 के अधिनियम की धारा 24 की धारा 4 के प्रावधानों को लागू करने का प्रावधान करती है, जो सीमा अधिनियम के तहत निर्धारित अवधि से अलग किसी भी मुकदमे अपील या आवेदन के संबंध में सीमा की अवधि निर्धारित करती है। दूसरे शब्दों में जहां तक विशेष या स्थानीय

अधिनियमों का संबंध है, सामान्य नियम यह है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 सहित निर्दिष्ट प्रावधान लागू होंगे, बशर्ते विशेष या स्थानीय अधिनियम परिसीमा अधिनियम के तहत निर्धारित अवधि से अलग परिसीमा की अवधि प्रदान ना करता हो। एक अतिरिक्त आवश्यकता है कि विशेष/स्थानीय अधिनियम परिसीमा अधिनियम के अनुप्रयोग को स्पष्ट रूप से बाहर नहीं करता है। भारत बनाम पोपुलर कंस्ट्रक्शन कंपनी [2001]8 एससीसी 470 में यह माना गया कि 'अपवर्जन' शब्द में 'आवश्यक निहितार्थ द्वारा अपवर्जन' भी शामिल है। कानून में यह प्रस्ताव विवाद में नहीं है। एकमात्र सवाल यह है कि क्या अधिनियम स्पष्ट रूप से या आवश्यक रूप से परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों को बाहर करता है। हमारा मानना है कि ऐसा होता है। तथ्य यह है कि अधिनियम की धारा 10(3) के तहत देरी माफी शक्ति प्रदान की गई है, जिससे पता चलता है कि संसद ने जानबूझकर धारा 4(2) के संबंध में न्यायालय की शक्ति को बाहर कर दिया था। इस दृष्टिकोण को गोपाल सरदार बनाम करूणा सरदार [2004]4 एससीसी 252 में इस न्यायालय के फैसले में भी समर्थन मिलता है। उस मामले में विचाराधीन वैधानिक प्रावधान पश्चिम बंगाल भूमि सुधार अधिनियम 1955 की धारा 8 के संबंध में था, अभिनिर्धारित किया गया था।

जहां कि कोई विशेष या स्थानीय विधि किसी वाद, अपील या आवेदन के लिए कोई ऐसा परिसीमा काल विहित करती है जो अनुसूची

द्वारा विहित परिसीमा काल से भिन्न है वहां धारा 3 के उपबंध ऐसे लागू होंगे मानो वह परिसीमा काल अनुसूची द्वारा विहित परिसीमा काल हो, तथा किसी वाद, अपील या आवेदन के निमित्त किसी विशेष या स्थानीय विधि द्वारा विहित परिसीमा काल का अवधारण करने के प्रयोजन के लिए, धारा 4 से धारा 24 तक के (जिनके अंतर्गत ये दोनों धारायें भी आती हैं) उपबंध केवल वहीं तक और उसी विस्तार तक लागू होंगे जहां तक और जिस विस्तार तक वे उस विशेष या स्थानीय विधि द्वारा अभिव्यक्त तौर पर अपवर्जित ना हों।

जबकि एक ही कानून में अपील और पुनरीक्षण दाखिल करने से संबंधित विभिन्न अन्य प्रावधानों के संबंध में विशिष्ट प्रावधान किये जाते हैं। ताकि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 का लाभ दिया जा सके और अधिनियम की धारा 8 के तहत किये जाने वाले आवेदन के लिए ऐसा प्रावधान नहीं किया गया है। यह स्पष्ट रूप से और आवश्यक रूप से इस प्रकार है कि विधायिका ने जानबूझकर परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के आवेदन को बाहर रखा है।

अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा मंगूराम (सुप्रीम) द्वारा जिस निर्णय पर भरोसा किया था, उसे गोपाल सरदार बनाम करूणा सागर से अलग किया गया, जो हमारी राय में सही है। मंगूराम के मामले में न्यायालय को इस प्रश्न पर विचार करना था कि क्या आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1898 की धारा 417 की उपधारा 4 में प्रदान की गई परिसीमा की

अनिवार्य अवधि के बावजूद भी परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के आवेदन को बाहर रखा था। परिसीमा अधिनियम 1963 की धारा 29(2)(बी) के प्रावधानों का अर्थ लगाया गया और माना गया।

> ‘‘केवल किसी भी अनुदेशात्मक या अनिवार्य भाषा में परिसीमा अवधि का प्रावधान धारा 5 की प्रयोज्यता को विस्थापित करने के लिए पर्याप्त नहीं है’

लेकिन इस मामले में अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (2) के अनिवार्य और बाध्यकारी प्रावधानों के अलावा अधिनियम के दो प्रावधान भी हैं, जो दर्शाते हैं कि परिसीमा अधिनियम 1963 की धारा 5 के प्रावधानों को लागू नहीं किया जा सकता है। बताया गया कि धारा 10(3) के तहत देरी की माफी के लिए एक स्पष्ट प्रावधान और अधिनियम की धारा 13 में यह प्रावधान है, जो बताता है कि अधिनियम के प्रावधान

> ‘‘इस अधिनियम के उपबंध, तत्समय प्रवर्त किसी अन्य विधि में या इस अधिनियम से भिन्न किसी विधि के आधार पर प्रभावी किसी लिखित में या किसी न्यायालय, अधिकरण या अन्य प्राधिकारी की किसी डिक्री या आदेश में इससे असंगत किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे।

सक्षम प्राधिकारी तराना बनाम विजय गुप्ता [1991] सुप्रीम 2 एससीसी 631 के निर्णय में व्यक्त किया, इसमें कोई संदेह नहीं है कि मध्यप्रदेश के प्रावधान कृषि जोत अधिनियम 1960 की परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के प्रावधानों को अपवर्जित नहीं करेगी। हालांकि मध्यप्रदेश अधिनियम के प्रावधानों का कोई संदर्भ नहीं है, जिससे न्यायालय को इस तरीके के निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए सहायता मिले।

अपीलकर्ता द्वारा पेश विद्याचरण शुक्ल बनाम खूबचंद [1964] 6 एससीआर 129 का फैसला समान रूप से अनुपयुक्त है, उस मामले में उठाये गये मुद्दों में से एक इस सवाल से संबंधित था कि क्या जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 की धारा 116ए को स्पष्ट रूप से या निहित रूप से परिसीमा अधिनियम 1908 के प्रावधानों को छोड़कर माना जा सकता है, जो अन्यथा इस अधिनियम धारा 29(2)(ए) पर लागू होते हैं। तर्क यह था कि 1951 अधिनियम की धारा 116ए की उपधारा 3 न केवल प्राधिकरण के आदेश की तारीख से उच्च न्यायालय में अपील करने के लिए तीस दिनों की अवधि प्रदान करती है, बल्कि यह भी प्रदान करती है कि उच्च न्यायालय अवधि समाप्त होने के बाद किसी अपील पर तभी विचार कर सकता है, जब वह संतुष्ट हो कि अपीलकर्ता के पास ऐसी अवधि के भीतर अपील न करने का पर्याप्त कारण है। हमें यह समझना है कि विद्याचरण शुक्ल में बताई गई विचारधारा धारा 10(3) को समझने के लिए काफी हद तक समान है, लेकिन समानता यहीं समाप्त हो जाती है। उस मामले में

न्यायालय ने माना कि परिसीमा अधिनियम 1908 की धारा 29(2)(ए) के शब्दों के कारण प्रावधान किसी स्पष्ट या निहित अपवर्जन के बराबर नहीं है। 1908 अधिनियम की धारा 29(2)(ए) परिसीमा अधिनियम 1963 की धारा 29(2)(बी) के प्रावधानों से भिन्न है। धारा 29 के पहले संस्करण में धारा 4, 9 से 18 और धारा 22 के प्रावधान एक विशेष या स्थानीय अधिनियम पर लागू होते थे, जब तक कि किसी विशेष या स्थानीय कानून ने ऐसी प्रयोज्यता को बाहर रखा हो। दूसरे शब्दों में विशेष या स्थानीय अधिनियम में किसी अपवर्जन की अनुपस्थिति में धारा 5 सहित परिसीमा अधिनियम के अन्य प्रावधान लागू नहीं होंगे। इसलिए यह माना गया कि परिसीमा अधिनियम 1951 की धारा 116ए की उपधारा 3 में प्रावधान आवश्यक हो गया था, क्योंकि यदि प्रावधान अधिनियमित नहीं किया गया था तो धारा 29(3)(ए) के आधार पर लिमिटेशन एक्ट 1908 के तहत यह परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के क्रियान्वयन को बाहर कर देता, जिसके परिणामस्वरूप देरी के लिए पर्याप्त कारण मौजूद होने पर भी उच्च न्यायालय देरी को बाहर करने में असहाय होता। यह माना गया कि 1951 अधिनियम की धारा 116ए की उपधारा 3 के प्रावधान ने केवल धारा 5 के तहत शक्ति को बहाल किया, जो कि परिसीमा अधिनियम 1908 की धारा 29(2)(बी) के तहत न्यायालय को अस्वीकार कर दी गई थी। परिसीमा अधिनियम 1963 की धारा 29(2)(बी) के संबंध में यह तर्क लागू नहीं होगा। 1963 अधिनियम के तहत धारा 29(2)(बी) भी अन्य बातों के साथ

साथ यह प्रावधान करती है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 लागू होगी, किसी विशेष/स्थानीय अधिनियम की उस धारा के अंतर्गत जब तक कि विशेष रूप से उसे बाहर न रखा गया हो। हुक्मदेव नारायण यादव बनाम एन.एन. मिश्रा [1974] 2 एससीसी 133 को विद्याचरण शुक्ल के निर्णय में लेखबद्ध किया गया तथा यह माना कि यह विशेष विवाद यह निर्धारित करने के लिए प्रासंगिक नहीं है कि क्या ऐसे विशेष या स्थानीय अधिनियम में धारा 29(2) में ''अपवर्जन'' शब्द के अर्थ के भीतर परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों को बहाल किया। इस न्यायालय द्वारा हुक्मदेव नारायण के निर्णय पर विचार हो चुका है व इस न्यायालय द्वारा गोपाल सरदार बनाम करूणा सरदार [2004] 4 एससीसी 252 का अनुसरण किया गया।

अपीलकर्ता का तर्क है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 4 से 24 में निहित समय के अपवर्जन के प्रावधान यदि शामिल नहीं किये जाते हैं तो एक असंगत परिणाम होगा। उदाहरण के लिए एक अपील को समय के साथ प्रतिबंधित कर दिया जायेगा। भले ही विशेष न्यायालय के आदेश की एक प्रति अपीलार्थी को उपलब्ध नहीं कराई गई थी। परिसीमा अधिनियम की धारा 12(2) उपलब्ध नहीं होगी, यह तर्क अस्वीकार्य है। अपीलार्थी द्वारा उस आदेश की प्रति प्राप्त करने के लिए लिया गया समय अधिनियम की धारा 10(3) के तहत इस न्यायालय द्वारा विवेकाधिकार के प्रयोग के लिए प्रासंगिक कारक हो सकता है। सीमा अधिनियम की धारा 4 से 24 के

अपवर्जन का केवल यह अर्थ होगा कि अपीलार्थी उन धाराओं के तहत प्रदान किये गये समय के अपवर्जन का दावा नहीं कर सकता है, जो धारा 10(3) के तहत पर्याप्त कारण स्थापित करने के लिए उन धाराओं के तहत उपलब्ध आधारों पर याचिकायें उठा सकती थीं।

वृहद न्यायपीठ द्वारा अपने निर्णय सिंथेटिक्स लिमिटेड (सुप्रीम) का मानना है कि परिसीमा अधिनियम 1963 के प्रावधान अधिनियम पर लागू नहीं होते हैं। हो सकता है कि शुरूआत में ही हमारे द्वारा तैयार किये गये प्रश्न का निष्कर्ष न निकला हो। वह मामला जैसा कि अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वकील द्वारा उचित रूप से तर्क में दिया गया कि अधिनियम की धारा 11 और उसके तहत विशेष न्यायालय की कार्यवाही तक ही सीमित था। यह उस संदर्भ में था कि अधिनियम में किसी परिसीमा अवधि का प्रावधान नहीं किया गया है, लेकिन हमारे द्वारा पहले ही बताये गये कारणों से हम एस.एल. सिंथेटिक्स में किये गये अंतिम निष्कर्ष से इस हद तक सहमत हैं कि परिसीमा अधिनियम 1963 के प्रावधानों का अधिनियम की धारा 4(2) के तहत याचिका के संबंध में कोई आवेदन नहीं है।

अंततः सीमा अधिनियम की धारा 29(2) धारा 4 से 24 में निहित प्रावधानों का केवल जहां तक और उस हद तक लागू करने की बात करती है, जिसके लिए वे ऐसे विशेष या स्थानीय कानूनों द्वारा स्पष्ट रूप से बहिष्कृत नहीं है। एस.एल. सिंथेटिक अपीलार्थी की ओर से उठाये गये तर्कों

का व प्रश्नों का उत्तर देगी अर्थात क्या परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों के प्रश्न पर अपवर्जन विशेष/स्थानीय अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों के संदर्भ में अलग से विचार किया जाना चाहिये। विशेष/स्थानीय अधिनियम में एक समग्र रूप से प्रथम विकल्प की अभिपुष्टि करनी चाहिये। हमें यह तय करने के लिए नहीं बुलाया गया है कि क्या दावे या तो विशेष न्यायालय के समक्ष पहली बार प्रस्तुत किये गये हैं या धारा 9ए(2) के तहत विशेष न्यायालय में स्थानांतरित किये गये हैं उन पर परिसीमा अधिनियम की धारा 4 से 24 के प्रावधान लागू होंगे। इस अपील के प्रयोजन के लिए यह मानना पर्याप्त है कि परिसीमा अधिनियम 1963 की धारा 29(2) विशेष न्यायालय (प्रतिभूति संव्यवहार अपराध विचारण) अधिनियम 1992 की धारा 4(2) के तहत कार्यवाही पर लागू नहीं होती है। चूंकि अपीलकर्ता की आपत्ति की याचिका उस धारा के तहत निर्धारित अवधि से काफी अधिक समय के बाद दायर की गई थी, इसलिए विशेष अदालत ने याचिका को तुरंत खारिज कर सही किया था। तद्नुसार बिना किसी जुर्माना के आदेश के अपील खारिज की जाती है।

अपील खारिज

यह अनुवाद आर्टिफीसियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी श्रीमती संतोष मीना (आर जे एस) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और अधिकारिक उद्देश्यो के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा । और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।